श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना

अप्रैल १९९३
षोड़श वर्ष : द्वादश अंक

तित्थयर

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक १२

अप्रैल १९९३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

मूल अर्धमागधी के स्वरूप की

पुनः रचना : एक प्रयत्न ३५५

चन्द्रकवेध्यक (प्रकीर्णक) ३६०

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र ३६८

संकलन ३७६

चौमुख, मिदनापुर

मूल अर्धमागधी के स्वरूप की पुनः रचना : एक प्रयत्न

डॉ. के. आर. चन्द्र

जैन अर्धमागधी आगम साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध के चौथे अध्ययन के प्रथम उद्देशक में अहिंसा धर्म के विषय में भगवान महावीर का उपदेश निम्न प्रकार है—

"सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्जावेतव्वा, न परिवेत्तव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा।"

अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और न ही उसे किसी भी प्रकार से पीड़ित करना चाहिए।

"यही शुद्ध, नित्य और शाश्वत धर्म है जो आत्मज्ञों के द्वारा उपदिष्ट है।" भगवान महावीर की इसी वाणी को अर्धमागधी भाषा के विभिन्न संस्करणों में निम्न प्रकार से सम्पादित किया गया है—

(१) शुब्रिंग—(१.४.१.) एस धम्मे सुद्धे नितिए सासए समेच्च लोगं खेयन्नेहिं एवेइए।

(२) आगमोदय—(१.४.१.१२६) एस धम्मे सुद्धे निइए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

(३) जैन विश्व भारती—(१.४.१.२) एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

(४) म. जै. विद्यालय—(१.४.१.१३२) एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहिं पवेदिते।

इन चारों पाठों में जो जो शब्द प्रयुक्त हैं उनमें से निम्न शब्द-रूप एक समान नहीं हैं—

संस्कृत	शु.	आगमो.	जै.वि.भा.	म.जै.वि.
१. नित्य =	नितिए	निइए	णिइए	णितिए
२. समेत्य =	समेच्च	समिच्च	समिच्च	समेच्च
३. लोकम् =	लोगं	लोयं	लोयं	लोयं
४. क्षेत्रज्ञैः =	खेयन्नेहिं	खेयण्णेहिं	खेयण्णेहिं	खेतण्णेहिं
५. प्रवेदितः =	पवेइए	पवेइए	पवेइए	पवेदिते

स्पष्ट है कि अपने अपने भाषाकीय सिद्धान्तों की मान्यता के अनुसार (न कि प्राकृत भाषा के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से और न ही समय, क्षेत्र और उपदेशक की वाणी के स्वरूप को ध्यान में लेकर) और प्राकृत व्याकरण-कारों के नियमों के प्रभाव में आकर (जो न यो काल की दृष्टि से ऐतिहासिक है और न अर्धमागधी भाषा की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं) अलग-अलग पाठों को स्वीकार किया है जिसके कारण शब्दों की वर्तनी में कितना अन्तर आया है और यह अन्तर क्यों आया उसे ही समझना आवश्यक है।

(१) किसी सम्पादक ने संयुक्त व्यंजन के पहले ए का इ कर दिया है, समिच्च (समेच्च)।

(२) किसी ने त का, तो किसी ने द का लोप कर दिया है, नितिए, निइए, पवेदिते, पवेइए।

(३) किसी ने प्रारम्भिक न का ण कर दिया है, नितिए, णिइए, णितिए।

(४) किसी ने क का लोप किया तो किसी ने क का ग कर दिया, लोयं लोगं। लोयं में उद्‌वृत्त स्वर की य श्रुति है।

(५) किसी ने ज्ञ का न्न, तो किसी ने ज्ञ का ण्ण कर दिया है .खेयन्न, खेयण्ण।

(६) किसी ने त्र का त किया तो किसी ने त्र का य किया अथवा

(७) किसी ने द (खेदज्ञ से) का त किया तो किसी ने इ का य कर दिया है।

(८) इस प्रकार के परिवर्तनों से ऐसा मालूम होता है कि हरेक सम्पादक की अर्धमागधी भाषा के विषय में अलग-अलग धारणा बनी हुई है।

(९) इसका मुख्य कारण यही है कि अर्धमागधी भाषा का व्याकरण किसी भी व्याकरणकार से हमें स्पष्टतः प्राप्त ही नहीं हुआ है।

इन सभी परिवर्तनों पर विचार किया जाय और उनकी समीक्षा तथा आलोचना की जाय तो अवश्य कुछ न कुछ समझ में आएगा कि इस प्रकार की विभिन्नता कैसे आ गई। शब्दों में प्राप्त ध्वनिगत परिवर्तनों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि—

(१) 'पवेदिल' शब्द में किसी को पालि भाषा का आभास होता होगा इसलिए पवेदिअ ही स्वीकारणा उचित लगा हो।

(२) 'खेयण्ण' और 'नितिय' में 'त' श्रुति की शंका हो गई हो इसलिए 'खेयण्ण' और 'निइअ' ही स्वीकार किया गया हो।

(३) प्रायः लोप के नियम से प्रेरित होकर त और द का लोप करना उचित मानकर पवेइअ को स्वीकार किया हो।

(४) ज्ञ का न्न अयोग्य समझकर व्याकरण के नियम से ण्ण कर दिया गया हो।

इन स्वीकृत पाठों में—

(१) पालि भी है—पवेदित,

(२) पालि और अर्धमागधी भी है—समेच्च,

(३) अर्धमागधी भी है—लोगं और

(४) महाराष्ट्री भी है—लोयं, णिइए खेयन्न।

(५) भाषा-सम्बन्धी दूसरी ओर अशोक के समय की पूर्वी क्षेत्र की विशेषताएँ भी हैं—लोगं, नितिए और (खेय) न्ने (हिं) जैसे शब्दों में।

(६) इस प्रकार के विश्लेषण से यह तो भाषाओं की खिचड़ी हो ऐसा प्रतीत होता है।

हरेक सम्पादक के पास जो भी सम्पादकीय सामग्री थी उनमें पाठान्तर भी मौजूद थे परन्तु उनमें से अमुक-अमुक पाठान्तरों को छोड़ दिया गया है। वास्तव में ऐतिहासिक भाषाविद् की दृष्टि से उन पाठों में से किसी एक में मूल भाषा की प्राचीनता सुरक्षित रह गयी हो। उदाहरणार्थ—

(१) शुब्रिंग महोदय द्वारा उपयोग में ली गई सामग्री में से चूर्णि और 'जी' संज्ञक प्रत में 'खेत्तन्नेहिं' पाठ उपलब्ध था।

(२) जैन विश्व भारती की 'च' संज्ञक प्रत में 'खेत्तनेहिं' पाठ था।

(३) म. जै. वि. के संस्करण में उपयोग में ली गई चूर्णि में 'खित्तण्ण' पाठ था।

(४) ऐसी अवस्था में 'खेत्तन्न' शब्द को अपने प्राचीन मूल रूप में नहीं अपना कर 'खेयन्न' या 'खेयण्ण' क्यों अपनाया गया जब भाषाकीय विकास की दृष्टि से ये दोनों ही रूप परवर्ती हैं—पहले खेयन्न और बाद में खेयण्ण।

शुब्रिंग महोदय ने मात्र एक ही रूप 'खेयन्न' को आचारांग (प्र. श्रुत-स्कंध) में सर्वत्र अपनाया है परन्तु जै. वि. भा. के संस्करण में 'खेयण्ण' भी मिलता है, आगमोदय समिति के संस्करण में भी खेयण्ण भी मिलता है और म. जै. वि. के संस्करण में खेयण्ण, खेतण्ण और खेत्तण्ण तो मिलते हैं परन्तु खेयन्न नहीं मिलता है। इस शब्द का संस्कृत रूप 'क्षेत्रज्ञ' है जिसका अर्थ है

'आत्मज्ञ' और इस खेयन्न का परवर्ती काल में टीकाकारों ने 'खेदज्ञ' के साथ जो सम्बन्ध जोड़ा है वह काल्पनिक है और (मूल भाषा को न समझने के कारण) कृत्रिम परिभाषा देकर उसे (तोड़-मरोड़ कर) समझाने का प्रयत्न किया गया है जिससे तुरन्त मध्यवर्ती द का लोप और य श्रुति से द का य हो जाना है। यह तो मात्र=माय और पात्र=पाय जैसा परिवर्तन हुआ आत्म=अत्त=आत=आय जैसा विकास है।

(१) अतः क्षेत्रज्ञ में त्र के स्थान पर द लाने की जरूरत नहीं थी।

(२) प्राचीन प्राकृत भाषा में त्र का त्त ही हुआ था न कि 'त' का 'य'।

(३) अशोक के पूर्वी क्षेत्र के शिलालेखों में ज्ञ का न्न है न कि ण्ण !

(४) सामान्यतः न्न का ण्ण ई. स. के बाद में प्रचलन में आया है और वह भी दक्षिण और उत्तर पश्चिम क्षेत्र से, न कि पूर्वी क्षेत्र से।

(५) न्न=ण्ण पूर्णतः महाराष्ट्री प्राकृत की ध्वनि है न कि पालि मागधी, पैशाची या शौरसेनी की।

(६) अतः मूल अर्धमागधी भाषा में न्न=ण्ण का प्रयोग करना उस भाषा को जबरदस्ती से या जाने अनजाने महाराष्ट्री भाषा में बदलने के समान है और क्या यह मूल अर्धमागधी भाषा के लक्षणों की अनभिज्ञता के कारण ही ऐसा नहीं हुआ है और हो रहा है।

(७) शुब्रिंग महोदय ने ज्ञ के लिए सर्वत्र न्न ही अपनाया है परन्तु त्र के स्थान पर य को स्थान देकर तथा त्त का त्याग करके उन्होंने अनुपयुक्त पाठ अपनाया है। वे स्वयं भी 'खेदज्ञ' शब्द से प्रभावित हुए हों ऐसा लगे बिना नहीं रहता। उन्होंने नित्य के स्थान पर नितिय अपनाया है वह प्राचीन भी है और बिलकुल उचित भी है, निइय और णिइय तो बिलकुल कृत्रिम है और मात्र मध्यवर्ती त के लोप का अक्षरशः पालन किया गया है ऐसा लगता है।

(८) आश्चर्य है कि पिशल के व्याकरण में न तो नितिय (जो प्राचीन है) शब्द मिलता है और न ही णिइय, निइय।

(९) प्राचीन शिलालेखों में और प्राचीन प्राकृत में स्वरभक्ति का प्रचलन है जैसे—क्य=किय, त्य=तिय, व्य=विय इत्यादि और ऐसे संयुक्त व्यंजनों में समीकरण बाद में आया है।

(१०) समेच्च के बदले में समिच्च अर्थात् ए के स्थान पर इ का प्रयोग (संयुक्त व्यंजनों के पहले) भी न तो सर्वत्र मिलेगा और न ही प्राचीनता का लक्षण है।

(११) क=ग के प्रयोगों से अर्धमागधी साहित्य भरा पड़ा है। क का ग भी पूर्वी क्षेत्र का (अशोक के शिलालेख) लक्षण है। क का लोप महाराष्ट्री का सामान्य लक्षण है और यह लोप की प्रवृत्ति काफी परवर्ती है। पवेदित में से द और त का लोप भी परवर्ती प्राकृत का लक्षण है। शौरसेनी और मागधी में तो द प्रायः यथावत ही रहता है और पालि तथा पैशाची में त।

(१२) अर्धमागधी का सम्बन्ध मागधी से अधिक है न कि महाराष्ट्री से। उसके नाम में मागधी शब्द ही उसकी प्राचीनता का बोध कराता है।

(१३) इस दृष्टि से जैन आगमों के प्राचीन अंशों में जो जो प्राचीन रूप (नामिक, क्रियापदिक तथा कृदन्त) मिलते हैं वे उसे पालि भाषा के समीप ले जाते हैं न कि महाराष्ट्री प्राकृत के निकट।

(१४) मूलतः अर्धमागधी भाषा मागधी और महाराष्ट्री का मिलन नहीं थी। यह तो परवर्ती प्रक्रिया की विकृति है।

अतः चर्चा का उपर्युक्त वाक्य यदि भगवान महावीर के समय का है, उनके मुख से निकली हुई वाणी है या उनके गणधरों द्वारा उसे भाषाकीय स्वरूप दिया है तब तो उसका पाठ इस प्रकार होना चाहिए—

एस धम्मे सुद्धे नितिए सासते[१] समेच्च लोगं खेत्तन्नेहिं[२] पवेदिते।

यदि यह वाणी भ. महावीर के मुख से प्रसूत नहीं हुई है या गणधरों की भाषा में प्रस्तुत नहीं की गयी है या ई. पू. चतुर्थ शताब्दी की प्रथम वाचना का पाठ नहीं है परन्तु तीसरी और अन्तिम वाचना में पूज्य देवर्धिगणि (पाँचवीं-छठी शताब्दी) के समय में इसे अन्तिम रूप दिया गया हो या उन्होंने ही श्रुत की रचना की हो तब तो हमारे लिए चर्चा का कोई प्रश्न ही नहीं बनता है और जो भी पाठ जिसको अपनाना है वह अपना सकता है।

१,२=[तृ. व. व. की विभक्ति 'हि' के बदले 'हिं' भी परवर्ती है। सासते में से 'त' का लोप भी अयोग्य लगता है। इन दोनों को अभी तो सामग्री (पाठान्तरों) के अभाव में प्रमाणित नहीं किया जा सकता परन्तु आशा है कि ऐसे पाठान्तर भी शोध करने पर किसी न किसी प्रत में मिल सकते हैं।]

चन्द्रकवेध्यक (प्रकीर्णक)

एक आलोचनात्मक परिचय

सुरेश सिसोदिया

वर्तमान में आगमों के अंग, उपांग, छेदसूत्र, मूलसूत्र, चूलिकासूत्र तथा प्रकीर्णक विभाग किये जाते हैं। यह विभागीकरण हमें सर्वप्रथम विधिमार्गप्रपा (जिनप्रभ १३वीं शताब्दी) में प्राप्त होता है।[1] सामान्यतया प्रकीर्णकों का अर्थ विविध विषयों पर संकलित ग्रन्थ ही किया जाता है। नन्दीसूत्र के टीकाकार मलयगिरि के अनुसार तीर्थङ्करों द्वारा उपदिष्ट श्रुत का अनुसरण करके श्रमण, प्रकीर्णकों की रचना करते थे। परम्परागत मान्यता है कि प्रत्येक श्रमण, एक-एक प्रकीर्णक की रचना करता था। समवायांगसूत्र में "चोरासीइं पण्णग सहस्साइं पण्णत्ता" कहकर ऋषभदेव के चौरासी हजार शिष्यों के चौरासी हजार प्रकीर्णकों की ओर संकेत किया गया है।[2] आज यद्यपि प्रकीर्णकों की संख्या निश्चित नहीं है फिर भी आज ४५ आगमों में दस प्रकीर्णक माने जाते हैं। ये दस प्रकीर्णक निम्नलिखित हैं।[3]

(१) चतुःशरण, (२) आतुरप्रत्याख्यान, (३) भक्तपरिज्ञा, (४) संस्तारक, (५) तंदुलवैचारिक, (६) चन्द्रकवेध्यक, (७) देवेन्द्रस्तव, (८) गणिविद्या, (९) महाप्रत्याख्यान और (१०) वीरस्तव।

इन दस प्रकीर्णकों के नामों में भी भिन्नता देखी जा सकती है। कुछ ग्रन्थों में चन्द्रकवेध्यक और वीरस्तव के स्थान पर मरणसमाधि और गच्छाचार को गिना गया है।[4] कहीं संस्तारक को नहीं गिनकर उसके स्थान पर गच्छाचार और मरण-समाधि को गिना गया है।[5]

---

१ विधिमार्गप्रपा, सम्पा० जिनविजय, पृ० ५५

२ समवायांगसूत्र, सम्पा० मुनि मधुकर, प्रका० श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, प्रथम संस्करण १९८२, ८४वाँ समवाय, पृ० १४३।

३ पइण्णयसुत्ताइं, सम्पा० मुनि पुण्यविजय, प्रका० श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, भाग-१, प्रथम संस्करण १९८४, प्रस्तावना पृ० २०।

४ प्राकृत साहित्य का इतिहास, जैन, जगदीश चन्द्र, प्रका० चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, ई० सन् १९६१, पृष्ठ १२३।

५ देखें, वही पृ० १२३ टिप्पणी।

नन्दी और पाक्षिक के उत्कालिक सूत्रों के वर्ग में देवेन्द्रस्तव, तंदुल-वैचारिक, चन्द्रकवेध्यक, गणिविद्या, मरणविभक्ति, आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान—ये सात प्रकीर्णक तथा कालिकसूत्रों के वर्ग में ऋषिभाषित और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति—ये दो प्रकीर्णक, अर्थात् वहाँ कुल नौ प्रकीर्णकों का उल्लेख मिलता है।[६]

यद्यपि प्रकीर्णकों की संख्या और नामों के विषय में मतभेद देखा जाता है, किन्तु यह सुनिश्चित है कि प्रकीर्णकों के सभी वर्गीकरणों में चन्द्रकवेध्यक को स्थान मिला है। इसका परिचय देना ही इस लेख का अभीष्ट है।

चन्द्रकवेध्यक प्रकीर्णक :

चन्द्रकवेध्यक १७५ गाथाओं की पद्यात्मक रचना है। सर्वप्रथम इसका उल्लेख नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र में उपलब्ध होता है। उक्त दोनों ही ग्रन्थों में यह आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत के अन्तर्गत समाविष्ट है।[७]

विभिन्न आगमों में चन्द्रकवेध्यक के भिन्न-भिन्न नाम प्राप्त होते हैं, यथा—चंदावेज्झयं, चंदगवेज्झं, चंदाविज्झयं, चंदयवेज्झं, चंदगविज्झं और चंदगविज्झयं। इन नामों के क्रमशः कई संस्कृत रूपान्तरण बनते हैं, जैसे—चन्द्रावेध्यक, चन्द्रवेध्यक, चन्द्रकवेध्य, चन्द्रकवेध्यक, चन्द्राविध्यक, चन्द्रविद्या और चन्द्रकविध्यक। सही नाम निर्धारित कर पाना यद्यपि सहज नहीं है, किन्तु स्पष्ट है कि इन सभी नामों में अर्थ की दृष्टि से कोई भिन्नता नहीं है। जो कुछ भिन्नता है, वह मात्र शाब्दिक भिन्नता ही है। जैन विद्या के बहुश्रुत विद्वान पद्मभूषण पं० दलसुखभाई मालवणिया के अनुसार इस ग्रन्थ का 'चन्द्रकवेध्यक' नाम सर्वाधिक उपयुक्त है।[८]

---

६ (क) नन्दीसूत्र, सम्पा० मुनि मधुकर, प्रका० श्री आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, ई० सन् १९८२, पृ० १६१-१६२।

(ख) पाक्षिकसूत्र, प्रका० देवचन्द्र लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार, पृ० ७६।

७ (क) उक्कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं तंजहा—(१) दसवेआलिअं,…(१५) चंदाविज्झयं,…(२९) महापच्चक्खाणं, एवमाइ।
नन्दीसूत्र, पृ० १६१-१६२।

(ख) नमो तेसिं खंमासमणाणं,…अंगाबहिरं उक्कालियं भगवंता। तंजहा—दसवेआलिअं (१),…चंदाविज्झयं (१४)…महापच्चक्खाणं (२८)—पाक्षिकसूत्र, पृ० ७६।

८ व्यक्तिगत चर्चा के अनुसार।

लेखक एवं रचनाकाल :

चन्द्रकवेध्यक के लेखक के सम्बन्ध में कहीं पर भी कोई निर्देश उपलब्ध नहीं होता है। प्राप्त संकेतों के आधार पर मात्र यही कहा जा सकता है कि यह पाँचवीं शताब्दी या उसके पूर्व के किसी स्थविर आचार्य की कृति है। लेखक के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार का संकेत सूत्र में उपलब्ध न हो पाने के कारण इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है।

चन्द्रकवेध्यक का उल्लेख नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र के अतिरिक्त नन्दी-चूर्णि और निशीथचूर्णि में भी मिलता है। चूर्णियों का काल लगभग ६-७वीं शताब्दी माना जाता है अतः चन्द्रकवेध्यक का रचनाकाल इससे पूर्व ही होना चाहिए। पुनः इस ग्रन्थ की उपलब्ध ताड़पत्रीय प्रत्रियाँ भी सिद्ध करती हैं कि यह प्राचीन होने के साथ-साथ बहुप्रचलित ग्रन्थ रहा है।

चन्द्रकवेध्यक के भाषायी स्वरूप पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अन्य प्रकीर्णकों की अपेक्षा चन्द्रकवेध्यक में उपलब्ध होने वाली गाथाओं का भाषायी स्वरूप अधिक प्राचीन प्रतीत होता है, किन्तु मात्र भाषायी स्वरूप के आधार पर भी इस ग्रन्थ की प्राचीनता को सिद्ध करना कठिन है।

चन्द्रकवेध्यक प्रकीर्णक की १७५ गाथाओं में से ६ गाथाएँ—उत्तरा-ध्ययन, ज्ञाताधर्मकथा तथा अनुयोगद्वार आदि आगमों में, ११ गाथाएँ—आवश्यक निर्युक्ति, उत्तराध्ययन निर्युक्ति, दसवैकालिक निर्युक्ति तथा ओघ-निर्युक्ति आदि में, ३४ गाथाएँ—मरणविभक्ति, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, तित्थोगाली, आराधनापताका तथा गच्छाचार आदि प्रकी-र्णकों में एवं ५ गाथाएँ-विशेषावश्यक भाष्य में मिलती हैं। साथ ही दिग-म्बर एवं यापनीय परम्परा के मान्य ग्रन्थों—भगवती आराधना, मूलाचार, नियमसार, सुत्तपाहुड आदि में लगभग १६ गाथाएँ इस प्रकीर्णक की मिलती हैं। ये सभी ग्रन्थ पाँचवीं-छठीं शताब्दी के मध्य के हैं, इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रकवेध्यक छठीं शताब्दी के पूर्व की रचना है।

विषय वस्तु :

'चन्द्रकवेध्यक' शीर्षक से ही यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में प्रतिपादित आचार के जो नियम आदि बताए गये हैं, उनका पालन कर पाना चन्द्रकवेध (राधा-वेध) के समान ही मुश्किल है। इस ग्रन्थ में सात द्वारों (अध्यायों) में सात गुणों का वर्णन इस प्रकार है—

१. विनय गुण :

'विनय गुण' नामक प्रथम द्वार में यह वर्णन प्राप्त होता है कि किसी शिष्य की महानता उसके द्वारा अर्जित व्यापक ज्ञान पर निर्भर नहीं है वरन् उसकी विनयशीलता पर आधारित है। गुरुजनों का तिरस्कार करने वाले विनय रहित शिष्य के लिए यहाँ तक कहा गया है कि वह लोक में कीर्ति और यश प्राप्त नहीं करता है, विनयपूर्वक विद्या ग्रहण करने वाले शिष्य के विषय में कहा गया है कि वह सर्वत्र विश्वास और कीर्ति प्राप्त करता है।

विद्या और गुरु का तिरस्कार करने वाले तथा मिथ्यात्व से युक्त होकर लोकेषणा में फँसे रहने वाले व्यक्तियों को ऋषिघातक तक कहा गया है। विद्या इस लोक में ही नहीं वरन् परलोक में भी सुख प्रदान करने वाली बतलायी गई है।

विद्या प्रदान करने वाले आचार्य और शिष्य के विषय में कहा गया है कि जैसे समस्त विद्याओं के प्रदाता गुरु कठिनाई से मिलते हैं वैसे ही चारों कषायों तथा खेद से रहित सरल चित्त वाले शिष्य भी मुश्किल से मिलते हैं।

२. आचार्य गुण :

विनय गुण के पश्चात् आचार्य गुण की चर्चा है। पृथ्वी के समान सहनशील, पर्वत की तरह अकम्पित, धर्म में स्थित, चन्द्रमा की तरह सौम्यकांति वाले, समुद्र के समान गंभीर तथा देश-काल के ज्ञाता आचार्यों की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

संख्या में बराबर होते हुए भी इस ग्रन्थ में बताये गये आचार्य के छत्तीस गुण भगवती आराधना[9], मूलाचार[10], प्रवचनसारोद्धार[11] आदि ग्रन्थों में प्राप्त गुणों से भिन्न हैं।

---

९ भगवती आराधना (शिवार्य), सम्पा० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रका० जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण ई० सन् १९७८, गाथा ४१९-४२७।

१० मूलाचार (वट्टकेर)—सम्पा० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८४, गाथा १५८-१५९।

११ प्रवचनसारोद्धार—प्रका० देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ई० सन् १९२२, गाथा ५४१-५४९।

आचार्यों की महानता के सन्दर्भ में कहा गया है कि इनकी भक्ति से जीव इस लोक में कीर्ति और यश को प्राप्त करता है और परलोक में विशुद्ध देवयोनि को प्राप्त करता है। आचार्यों के वन्दन की महत्ता का जैसा उल्लेख इस ग्रन्थ में मिलता है वैसा शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ में मिलता हो। ग्रन्थ में कहा है—इस लोक के जीव तो क्या देवलोक में स्थित देवता भी अपने आसन एवं शय्या आदि का त्यागकर अप्सरा समूह के साथ आचार्यों की वन्दना करने के लिए जाते हैं।

३. शिष्य गुण :

शिष्य गुण के सन्दर्भ में कहा गया है कि नाना प्रकार से परिग्रहों को सहन करने वाले, लाभ-हानि में समभाव से रहने वाले, अल्प इच्छा में सन्तुष्ट रहने वाले, ऋद्धि के अभिमान से रहित, दस प्रकार की सेवा-सुश्रूषा में सहज, आचार्य की प्रशंसा करने वाले तथा संघ की सेवा करने वाले एवं ऐसे ही विविध गुणों से सम्पन्न शिष्य की कुशल-जन प्रशंसा करते हैं।

शिष्य किसके होते हैं? इसके उत्तर में कहा गया है कि समस्त अहंकारों को नष्टकर जो शिष्य शिक्षित होता है, उसके बहुत से शिष्य होते हैं, किन्तु कुशिष्य के कोई भी शिष्य नहीं होते। शिक्षा किसे देनी चाहिये, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि किसी शिष्य में सैकड़ों दूसरे गुण भले ही क्यों न हों, किन्तु यदि उसमें विनय गुण नहीं है तो ऐसे पुत्र को भी वाचना न दी जाए, फिर गुण-विहीन शिष्य का तो प्रश्न ही कहाँ? अर्थात् उसे तो वाचना दी ही नहीं जा सकती।

४. विनय-निग्रह गुण :

चन्द्रकवेध्यक में विनय गुण और विनय-निग्रह गुण ये दो स्वतन्त्र द्वार हैं, किन्तु विषय वस्तु पर दृष्टिपात से यह स्पष्ट नहीं होता कि विनय गुण और विनय-निग्रह गुण में क्या अन्तर है? दोनों ही द्वारों में प्रदत्त विवरण का तात्पर्य विनम्रता या आज्ञापालन से ही है। वैसे विनय शब्द विनम्रता के साथ-साथ आचार-नियमों का भी सूचक है। विनय-निग्रह द्वार में जो गाथाएँ हैं, उनका तात्पर्य भी आचार-नियम से ही प्रतिफलित होता है। अतः कहा जा सकता है विनय-निग्रह गुण से लेखक का तात्पर्य आगमोक्त आचार-नियमों के परिपालन से ही रहा होगा।

विनय-निग्रह गुण नामक इस परिच्छेद में विनय को मोक्ष का द्वार कहा गया है और सदैव विनय का पालन करने की प्रेरणा दी गई है। सभी कर्म-

भूमियों में अनन्त ज्ञानी जिनेन्द्र देवों द्वारा भी सर्वप्रथम विनय गुण को प्रतिपादित किया गया है तथा इसे मोक्ष मार्ग में ले जाने वाला शाश्वत गुण कहा गया है। मनुष्यों के सम्पूर्ण सदाचार का सारतत्त्व भी विनय में ही प्रतिष्ठित होना बतलाया है। आगे यह भी कहा है कि विनय रहित तो निर्ग्रन्थ साधु भी प्रशंशित नहीं होते।

५. ज्ञान गुण :

'ज्ञान गुण' नामक पाँचवें द्वार में ज्ञान गुण के विषय में कहा गया है कि वे पुरुष धन्य हैं, जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट अति विस्तृत ज्ञान को समग्रतया नहीं जानते हुए भी चारित्र सम्पन्न हैं। ज्ञात दोषों का परित्याग और गुणों का परिपालन—ये ही धर्म के साधन कहे गये हैं।

ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि इस लोक में अत्यधिक सुन्दर एवं विलक्षण होने से क्या लाभ? क्योंकि लोक में तो लोग चन्द्रमा की तरह विद्वान् के मुख को ही देखते हैं। ज्ञान को ही मुक्ति का साधन माना गया है, क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति संसार में परिभ्रमण नहीं करता है। साधक के लिए कहा गया है कि जिस एक पद द्वारा व्यक्ति वीतराग के मार्ग में प्रवृत्ति करता है, मृत्यु समय में भी उस पद को नहीं छोड़ना चाहिए।

६. चारित्र गुण :

चारित्र गुण नामक छठें द्वार में उन पुरुषों को प्रशंसनीय बतलाया गया है, जो गृहस्थरूपी बन्धन से पूर्णतः मुक्त होकर जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट मुनि-धर्म के आचरण हेतु प्रवृत्त होते हैं। दृढ़ धैर्य वाले मनुष्यों के विषय में कहा है कि वे दुःखों के पार चले जाते हैं। आगे यह भी कहा है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति और जुगुप्सा को समाप्त कर देने वाले उद्यमी पुरुष ही परम-सुख को खोज पाते हैं। चारित्र शुद्धि के विषय में कहा गया है कि पाँच समितियों और तीन गुप्तियों में जिसकी निरन्तर मति है तथा जो राग-द्वेष नहीं करता है, उसी का चारित्र शुद्ध होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में रत्नत्रय में से सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता को स्वीकार किया गया है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह दर्शन को पकड़ रखे, क्योंकि चारित्र रहित व्यक्ति तो भविष्य में सम्यक् चारित्र का अनुसरण करके सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु दर्शन रहित व्यक्ति कभी भी सिद्ध नहीं हो सकते। उत्तराध्ययनसूत्र में भी सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अपेक्षा सम्यक्दर्शन

को ही प्राथमिकता दी गई है।[१२] तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति ने भी अपने ग्रन्थ में दर्शन को ज्ञान और चारित्र के पहले स्थान दिया है।[१३] आचार्य कुन्दकुन्द दर्शनपाहुड में कहते हैं कि धर्म अर्थात् साधनामार्ग दर्शन प्रधान है।[१४] भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक में भी दर्शन को ही प्राथमिकता दी गई है।[१५]

७. मरण गुण :

'मरण गुण' नामक सातवें और अन्तिम द्वार में ग्रन्थकार समाधि-मरण की उत्कृष्टता का बोध कराते हैं। वे कहते हैं कि विषयसुखों का निवारण करने वाली पुरुषार्थी आत्मा मृत्यु समय में समाधिमरण की गवेषणा करनेवाली होती है। यह भी कहा गया है कि साधु कुछ समाधिमरण प्राप्त कर पाते हैं, अधिकांश का समाधिमरण नहीं होता है।

कौन व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त कर सकता है? इस विषय में कहा गया है कि विनिश्चित बुद्धि से अपनी शिक्षा का स्मरण करने वाला व्यक्ति ही कसे हुए धनुष पर तीर चढ़ाकर चन्द्रक अर्थात् यन्त्र चालित पुतली के अक्षिका-गोलक को वेध पाता है, जो थोड़ा सा भी प्रमाद करता है वह लक्ष्य को नहीं वेध पाता। वस्तुतः चन्द्रकवेध्यक का अर्थ लक्ष्य को प्राप्त करना ही है।

समाधिमरण किसे होता है? इस विषय में कहा गया है कि सम्यक् बुद्धि की प्राप्ति, अन्तिम समय में साधना में विद्यमान, पाप कर्म की आलोचना, निन्दा और गर्हा करने वाले व्यक्ति का मरण ही शुद्ध होता है अर्थात् उसका ही समाधिमरण होता है।

कषाय किसी व्यक्ति का कितना अहित कर सकते हैं, यह दर्शाते हुये कहा गया है कि जिस व्यक्ति ने करोड़ पूर्व वर्ष से कुछ कम वर्ष तक चारित्र का पालन किया हो; ऐसे दीर्घ संयमी व्यक्ति के चारित्र को भी कषाय क्षणभर में नष्ट कर देते हैं।

---

१२ उत्तराध्ययनसूत्र—सम्पा० मुनि मधुकर, प्रका० श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, अध्ययन २८-२९।

१३ "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।"—तत्त्वार्थसूत्र, विवेचक पं० फूलचन्द शास्त्री, प्रका० श्री गणेश प्रसाद वर्णी दिग० संस्थान, वाराणसी, सूत्र १।१।

१४ दर्शनपाहुड, २।

१५ भत्तपइण्णा, पइण्णयसुताइं, सम्पा० मुनि पुण्यविजय, गाथा ६५-६६।

साधुचर्या का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे साधु धन्य हैं, जो सदैव राग-रहित, जिनवचनों में लीन तथा निवृत्त-कषाय वाले हैं एवं आसक्ति और ममता रहित होकर अप्रतिबद्ध विहार करने वाले, निरन्तर सद्गुणों में रमण करने वाले तथा मोक्ष मार्ग में लीन रहने वाले हैं।

बुद्धिमान् पुरुष के लिए कहा गया है कि वह गुरु के समक्ष सर्वप्रथम अपनी आलोचना और आत्म-निन्दा करे, तत्पश्चात् गुरु जो प्रायश्चित दे, उसकी स्वीकृति रूप 'इच्छामि खमासमणो' के पाठ से गुरु को वन्दन करे और गुरु को कहे कि आपने मुझे निस्तारित किया।

आसक्ति त्याग पर बल देते हुए कहा है कि मृत्यु समय में सोना-चाँदी, दास-दासी, धन-वैभव यहाँ तक कि परिजन आदि कुछ भी मनुष्य के सहायक नहीं होते। आत्म-समाधि की अपेक्षा ये सभी तुच्छ हैं। समाधिमरण के इच्छुक व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं के प्रति किसी तरह की आसक्ति नहीं रखते हैं, वे इस हेतु अपने शरीर के मोह का भी त्याग कर देते हैं।

ग्रन्थ का समापन यह कहकर किया गया है कि विनयगुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय-निग्रह गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण, और मरण गुण विधि को सुनकर उन्हें उसी प्रकार धारण करें, जिस प्रकार वे शास्त्र में प्रतिपादित हैं। इस प्रकार की साधना से गर्भवास में निवास करने वाले जीवों के जन्म-मरण, पुनर्भव, दुर्गति और संसार में गमनागमन समाप्त हो जाते हैं।

[प्रस्तुत लेख आगम संस्थान, उदयपुर द्वारा प्रकाशित चन्द्रकवेध्यक प्रकीर्णक ग्रंथ की भूमिका को आधार बनाकर लिखा गया है। ग्रन्थ की भूमिका लेखक ने पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी के निदेशक प्रो० सागरमल जैन के सहयोग से लिखी है, अतः लेखक उनके प्रति आभारी है]

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

सप्तम सर्ग

राम क्रुद्ध होकर पंचानन रथ में बैठकर रावण को मारने की इच्छा से युद्ध करने लगे। मुहूर्त भर में उन्होंने रावण के रथ को भग्न कर दिया। तब रावण अन्य रथ पर चढ़ा। जगत में अद्वितीय वीर राम ने इस प्रकार पाँच पाँच बार रावण के रथ को भग्न कर डाला। तब रावण ने सोचा राम तो अनुज वियोग में स्वयं ही मर जाएगा। क्यों व्यर्थ ही मैं युद्ध करूँ। ऐसा सोचकर वह लंका लौट गया। तब शोकाकुल राम लक्ष्मण के पास आए। उसी समय सूर्य अस्त हो गया। मानों राम के शोक से आतुर होकर वह आकाश में रह नहीं पाया।

लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर राम भी व्याकुल बने अचेत होकर गिर पड़े। सुग्रीवादि ने आकर राम पर चन्दन जल के छींटे डाले फलतः राम की संज्ञा लौटी। राम उठे और लक्ष्ण के पास जाकर बैठ गए। और इस प्रकार विलाप करने लगे, 'हे वत्स, बताओ तुम्हें क्या कष्ट हुआ है ? तुमने क्यों मौन धारण कर रखा है ? यदि नहीं बोल पा रहे हो तो इशारे से ही कुछ बताकर अपने अग्रज को प्रसन्न करो। हे प्रियदर्शन वीर, सुग्रीवादि तुम्हारे ये अनुचर तुम्हारा मुख देख रहे हैं, बोल कर या देखकर किसी भी प्रकार तुम उन्हें अनुगृहीत क्यों नहीं करते ? यदि तुम इस लज्जावश नहीं बोल रहे हो कि रावण तुम्हारे सामने से जीवित चला गया तो बोलो तुम्हारे इस मनोरथ को मैं तत्काल पूर्ण करूँगा। अरे ओ दुष्ट रावण, तू भाग कर कहाँ जा रहा है। मैं तुझे अल्प समय में ही मृत्यु पथ का पथिक बना दूँगा।'

ऐसा कहकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वे उठ खड़े हुए। उसी समय सुग्रीव उनके सन्मुख आकर विनय पूर्वक बोले, 'हे स्वामी, अभी रात्रि है, रावण लंका लौट गया है। हमारे स्वामी लक्ष्मण शक्ति के प्रहार के कारण अचेत हो गए हैं। इसीलिए अभी इनकी चेतना को लौटाने का प्रयत्न करें। अब रावण को मरा ही समझ लें।'

राम पुनः विलाप करने लगे, 'ओह ! पत्नी का हरण हो गया। अनुज लक्ष्मण मारा गया, किन्तु यह राम अभी भी जीवित है। यह क्यों नहीं हजार

टुकड़े हो गया ? हे मित्र सुग्रीव, हे हनुमान, हे भामण्डल, हे नल, हे अंगद, हे विराध और हे अन्यान्य वीरों तुम सब अपने-अपने स्थान को लौट जाओ। हे विभीषण, सीता हरण और लक्ष्मण की मृत्यु से तुम दुःखी हो जिसके कारण तुम अपना अभीष्ट अभी तक प्राप्त नहीं कर सके, उसे हे बन्धु, कल सुबह ही अपने आत्मीय रूपी शत्रु रावण को मेरे आत्मीय लक्ष्मण का अनुगामी होते देखोगे। तुम्हें कृतार्थ करने के पश्चात् मैं भी अपने अनुज का अनुसरण करूँगा। कारण लक्ष्मण के बिना सीता का भी मेरे जीवन में क्या प्रयोजन है ?'

विभीषण बोले, 'हे प्रभु, आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? इस शक्ति से मूर्च्छित व्यक्ति मात्र एक रात्रि ही जीवित रहता है। अतः रात्रि समाप्त होकर प्रभात होने के पूर्व ही मन्त्र-तन्त्र द्वारा लक्ष्मण के आघात का प्रतिकार करने का प्रयत्न करें।'

राम ने यह स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त सुग्रीव आदि ने विद्या बल से राम और लक्ष्मण के चारों ओर चार-चार द्वार विशिष्ट सात प्राकार बनाए। पूर्व दिशा के द्वार पर क्रमशः सुग्रीव, हनुमान, वरकुन्द, दधिमुख, गवाक्ष और गवय रहे। उत्तर दिशा के द्वार पर क्रमशः अंगद, कूर्म, अंग, महेन्द्र, विहंगम, सुषेण और चन्द्ररश्मि रहे। पश्चिम दिशा के द्वार पर अनुक्रम से नील, दुर्द्धर, मन्मथ, जय, विजय और सम्भव रहे। और दक्षिण दिशा के द्वार पर भामण्डल, विराध, गज, भुवनजित, नल, मैन्द और विभीषण रहे। इस प्रकार राम लक्ष्मण को घेरकर सुग्रीवादि योगी की तरह जागते रहे।

उसी समय कोई आकर सीता को बोला, 'रावण के शक्ति प्रहार से लक्ष्मण की मृत्यु हो गयी है और अनुज के स्नेह से दुःखी राम कल सुबह मृत्यु वरण करेंगे।' वज्र-निर्घोष से इस भयंकर संवाद को सुनकर सीता मूर्च्छित होकर पवन प्रताड़ित लता की भाँति गिर पड़ी। विद्याधरियों ने उनके मुख पर जल के छींटे डालकर उसकी चेतना लौटायी। तब वह करुण क्रन्दन करती हुयी विलाप करने लगी—'हा वत्स लक्ष्मण, तुम अपने अग्रज को अकेला छोड़कर कहाँ चले गए ? क्या तुम नहीं जानते तुम्हारे बिना उनके लिए एक मुहूर्त भी जीवित रहना मुश्किल है ? मुझ जैसी अभागिन को धिक्कार है! हाय, मेरे कारण ही देवतुल्य राम और लक्ष्मण इस स्थिति को प्राप्त हुए। हे धरणी, तुम मुझ पर कृपा कर अपने गर्भ में मुझे स्थान दो। तुम दो भागों में विभक्त हो जाओ ताकि मैं तुम्हारे मध्य प्रविष्ट हो जाऊँ। हे हृदय, तुम क्यों नहीं अब भी फटकर मेरे प्राणों को निकलने के लिए मार्ग दे रहे हो ?'

सीता का ऐसा करुण क्रन्दन सुनकर एक विद्याधरी के मन में दया उत्पन्न हो गयी। वह अवलोकिनी विद्या से भवितव्यता देखकर सीता से बोली, 'हे देवी, कल सुबह ही तुम्हारे देवर लक्ष्मण अक्षतांग होकर ठीक हो जाएँगे। तदुपरान्त वे और राम यहाँ आकर तुम्हें आनन्दित करेंगे।' विद्याधरी का यह कथन सुनकर सीता कुछ आश्वस्त हुयी। वह चक्रवाकी की भाँति निर्निमेष नेत्रों से सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगी।

आज मैंने लक्ष्मण को मार डाला सोचकर कुछ समय के लिए रावण के मन में संतोष हुआ किन्तु थोड़ी देर के बाद ही उसका वह सन्तोष दुःख में बदल गया। वह अपने भ्राता, पुत्र और मित्रों के बन्धन को स्मरण कर रोने लगा—'हे वत्स कुम्भकर्ण, तुम मेरी दूसरी आत्मा थे। हे पुत्र इन्द्रजित, हे मेघवाहन, तुम दोनों मेरी दोनों भुजाओं के तुल्य थे। हे जम्बूमाली आदि वीरों, हे मित्रों, तुम लोग मुझ से अभिन्न थे। तुम लोग तो गजेन्द्र की तरह बन्धन में आनेवाले नहीं थे। फिर तुम कैसे बन्धन में पड़ गए?' इस प्रकार उन्हें स्मरण कर रोते-रोते रावण बार-बार गिरा जा रहा था, मूर्च्छित हो रहा था, पुनः संज्ञा लौटने पर विलाप करने लगता था और पुनः मूर्च्छित हो जाता था।

राम की सेना के चारों ओर निर्मित प्राकार के दक्षिण द्वार के रक्षक भामण्डल के निकट एक विद्याधर आया और बोला, 'यदि तुम राम का हित चाहते हो तो मुझे इसी क्षण राम के पास ले चलो। मैं लक्ष्मण को बचाने का उपाय बतलाऊँगा क्योंकि मैं तुम्हारा हितैषी हूँ।'

यह सुनकर भामण्डल हाथ पकड़कर उसे राम के पास ले गया। वह राम को प्रणाम कर बोला—'हे स्वामी, मैं संगीतपुर के राजा शशिमण्डल का पुत्र हूँ। मेरा नाम प्रतिचन्द्र है। सुप्रभा नामक रानी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। एक बार मैं विमान में बैठकर क्रीड़ा करने के लिए स्वपत्नी के साथ आकाश-पथ से जा रहा था। सहस्रविजय नामक विद्याधर ने मुझे देखा और मेरे विवाह सम्बन्धी वैर के कारण बहुत देर तक मुझसे युद्ध किया। अन्ततः चण्डरवा शक्ति के प्रहार से मुझे नीचे गिरा दिया। मैं अयोध्या के महेन्द्रोदय नामक उद्यान में जा पड़ा। मुझे नीचे गिरा हुआ देखकर आपके अनुज भरत ने सुगन्धित जल लाकर मेरे क्षत स्थानों पर लगाया। चोर जैसे अन्य के घर से भाग जाता है उसी प्रकार वह शक्ति मेरी देह से निकल कर भाग गयी और मेरा घाव भर गया। मैंने आश्चर्य के साथ आपके अनुज से उस जल के माहात्म्य की बात पूछी। वे बोले—

'एक बार विन्ध्य नामक सार्थवाह गजपुर से यहाँ आए थे। उनके साथ एक भैंसा था। उस पर अत्यधिक भार लादा हुआ था। उस भार को सहन न कर सकने के कारण वह रास्ते में ही गिर गया। उसमें उठने की भी शक्ति नहीं थी। अतः विंध्य उसे वहीं छोड़कर अपने गन्तव्य स्थल को चला गया। नगर के लोग उसके मस्तक पर पैर रखकर उसे कुचलते हुए जाने लगे। इस प्रकार उपद्रव पीड़ित होने से उसकी मृत्यु हो गयी। अकाम निर्जरा के योग से मृत्यु के पश्चात् उसने श्वेतंकर नगर के राजा पवनपुत्रक नामक वायु कुमार देव के रूप में जन्म ग्रहण किया। अवधि ज्ञान से अपनी कष्टकर मृत्यु को जानकर वह कुपित हो उठा और अयोध्या एवं अयोध्या के निकटवर्ती स्थानों में नाना प्रकार की व्याधि उत्पन्न करने लगा। लोग उस व्याधि से आक्रान्त होकर आकुल-व्याकुल हो गए। द्रोणमेघ नामक मेरे एक मामा हैं। वे हमारे राज्य में ही निवास करते हैं। किन्तु उनके अधिकार में जो भी स्थान थे वहाँ और उनके घर में किसी भी प्रकार की व्याधि का प्रकोप नहीं था। मैंने जब उनसे इसका कारण पूछा तो वे बोले—

'मेरी प्रियंकरा नामक रानी पहले अत्यन्त रुग्ण रहा करती थी। कुछ समय बाद उसने गर्भ धारण किया। गर्भ के प्रभाव से वह रोग-मुक्त हो गयी। यथा समय उसने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम विशल्या रखा गया। समस्त देशों की भाँति हमारे प्रान्त में भी रोग उत्पन्न हो गया। मैंने तब कुछ सोचकर विशल्या का स्नान जल सब पर छिड़क दिया, उससे वे सब रोग-मुक्त हो गए। सत्यभूति नामक मुनि से मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा यह उसकी पूर्व जन्म की तपस्या का फल है। उसके स्नान-जल से घाव सूख जाता है। अस्त्र प्रहार और विंधी हुयी शक्ति बाहर निकल जाती है। व्याधि निरामय हो जाती है। राम के अनुज लक्ष्मण इसके पति होंगे।

'मुनि कथन से सम्यक् ज्ञान से और अनुभव से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह बात सत्य है। ऐसा कहकर मेरे मामा ने मुझे विशल्या का स्नान जल दिया। मैंने समस्त देश में वह छिड़क दिया। उससे सभी रोग-मुक्त हो गए। वही जल मैंने तुम्हारे ऊपर छिड़का है। फलतः तुम्हारी देह से शक्ति निकल गयी और तुम निरोग हो गए हो।

'इस प्रकार मुझे और भरत को जल के प्रभाव पर विश्वास हो गया है। अतः आप प्रभात होने के पूर्व ही विशल्या का स्नान-जल लाया जा सके ऐसी व्यवस्था करिए। सबेरा होने पर आप कुछ नहीं कर सकेंगे। कारण गाड़ी ही यदि नष्ट हो जाय तो गणेश क्या करेगा?

यह सुनकर राम ने विशल्या का जल लाने के लिए सुग्रीव, भामण्डल, हनुमान और अंगद को तत्काल भरत के निकट भेजा, वे विमान में बैठकर वायुवेग से अयोध्या जा पहुँचे। भरत प्रासाद की छत पर सोये हुए थे। उन्हें जगाने के लिए वे आकाश में स्थित होकर गीत गाने लगे। राज-कार्य के के लिए राजा को किसी भी प्रकार जगाना उचित है। गीत के शब्दों को सुनकर भरत जाग गए। भामण्डल आदि ने जाकर उन्हें नमस्कार किया। भरत ने उनसे अकस्मात् रात्रि में आने का कारण पूछा। उन्होंने भी जो सत्य था सब कह सुनाया। आप्त-पुरुषों के सम्मुख कुछ भी छिपाना उचित नहीं होता। भरत कुछ देर तक तो चिन्ता करते रहे तदुपरान्त उनके साथ विमान में बैठकर कौतुक-मंगल नगर गए।

भरत ने द्रोणमेघ के पास जाकर विशल्या के लिए याचना की। द्रोणमेघ ने अन्य एक हजार कन्याओं को विशल्या के साथ लक्ष्मण से विवाह करने को प्रदान की। सुग्रीवादि भरत को पुनः अयोध्या पहुँचा कर तत्काल विशल्या सहित लंका लौट आए।

ये प्रज्वलित दीप युक्त विमान में बैठकर गए थे इसलिए उसके आलोक ने वानर सैन्यमें सूर्य उदय हो गया का भय पैदा कर दिया। किन्तु उनके पहुँचते ही वह क्षोभ आनन्द में परिवर्तित हो गया।

भामण्डल ने तुरन्त विशल्या को लक्ष्मण के समीप उतारा। विशल्या ने लक्ष्मण का शरीर स्पर्श किया। स्पर्श मात्र से ही लक्ष्मण के देह से शक्ति उसी प्रकार निकल गयी जिस प्रकार लकड़ी से सर्पिनी निकल जाती है। शक्ति जब निकल कर आकाश पथ से जा रही थी तब हनुमान् ने बाज जैसे पक्षी को पकड़ लेता है उसी प्रकार लपक कर उसे पकड़ लिया। शक्ति बोली—'मैं तो देव रूप हूँ। इसमें मेरा जरा भी दोष नहीं है। मैं प्रज्ञप्ति विद्या की बहन हूँ। धरणेन्द्र ने मुझे रावण को दिया था। विशल्या के पूर्वभव के तपः तेज को सहन न कर सकने के कारण मैं जा रही हूँ। मैं तो दास की भांति निरपराध हूँ। मुझे छोड़ दें।'

शक्ति की बात सुनकर वीर हनुमान ने उसे छोड़ दिया। छोड़ते ही मानों शक्ति लज्जित हो गई हों इस प्रकार तत्क्षण अन्तर्धान हो गयी। विशल्या ने पुनः लक्ष्मण की देह पर हाथ फेरा और धीरे-धीरे गोशीर्ष चन्दन का लेप लगा दिया। क्षत भर गया। लक्ष्मण नींद से जागे व्यक्ति की तरह उठ बैठे। राम ने आनन्द के अश्रु प्रवाहित करते हुए अनुज को आलिंगन में ले लिया।

राम ने लक्ष्मण को विशल्या का समस्त वृतान्त कह सुनाया और स्वयं पर एवं अन्यान्य आहत सैनिकों पर विशल्या का स्नान जल छिड़कवाया।

तदुपरान्त राम की आज्ञा से एक हजार कन्याओं के साथ विशल्या का विधिपूर्वक लक्ष्मण से विवाह कर दिया गया। विद्याधरों ने लक्ष्मण के इस आश्चर्यजनक नवजीवन प्राप्ति के लिए महामहोत्सव किया।

लक्ष्मण की जीवन प्राप्ति का संवाद पाकर रावण ने अपने उत्तम मन्त्रियों को बुलवाया और कहा 'मैंने सोचा था शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण के साथ-साथ स्नेह के कारण राम भी मृत्यु को प्राप्त होगा। दोनों की मृत्यु से बानर भागकर स्व-स्व स्थान को चले जाएँगे और अनुज कुम्भकर्ण, पुत्र इन्द्रजित आदि मुक्त होकर मेरे पास लौट आएँगे। किन्तु दैव की विचित्रता से लक्ष्मण बच गया। अतः बताओ, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित आदि को मुक्त कैसे कराएँ?'

मन्त्रीगण बोले, 'सीता को मुक्त किए बिना कुम्भकर्ण आदि को मुक्त करवाना कठिन है। इसके अतिरिक्त कोई भयानक विपत्ति भी आ सकती है। हे स्वामीन्, जो वीर चले गए हैं उन्हें तो लाया नहीं जा सकता किन्तु जो हमारे कुल में बचे हुए हैं उन्हें मृत्यु से बचा लीजिए। उनकी रक्षा के लिए राम से प्रार्थना करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है।'

मन्त्रियों का यह कथन रावण को अच्छा नहीं लगा। अतः उसने उनकी अवज्ञाकर सामन्त नामक दूत को यह कहकर राम के पास भेजा कि तुम साम दाम और दण्ड नीति का आश्रय लेकर राम को समझाओ। दूत रामकी छावनी में गया। द्वारपाल ने राम को इसके आने की सूचना दी। राम ने उसे बुलवाया। सुग्रीवादि वीरों के मध्य उपविष्ट राम को उसने आकर नमस्कार किया और गम्भीर भाव से बोला, 'महाराज रावण ने कहलवाया है कि 'मेरे बन्धुवर्ग को मुक्त कर दो और सीता मुझे अर्पण कर दो। इसके बदले मेरा आधा राज्य ग्रहण करो। मैं तुम्हें तीन हजार कन्याएँ उपहार स्वरूप दूँगा। यदि तुम इससे सहमत नहीं होते हो तो तुम्हारा जीवन और तुम्हारी सेना कुछ भी नहीं बचेगी।'

राम ने प्रत्युत्तर में कहा, 'दूत, मुझे राज्य सम्पत्ति की इच्छा नहीं है, न मुझे अन्य स्त्रियों की भोग की लालसा है। यदि रावण अपने बन्धु-बान्धवों को मुक्त करवाना चाहता है तो उसके लिए उचित है सीता की पूजा कर उसे मेरे पास भेज दे। अन्यथा कुम्भकर्ण आदि को मुक्त नहीं किया जाएगा।'

सामन्त बोला, 'हे राम, ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मात्र एक स्त्रीके लिए तुम क्यों अपना जीवन संशय मे डाल रहे हो। रावण के प्रहार से लक्ष्मण एक बार बच गया है किन्तु अब वह आशा मत करो। रावण अकेला ही समस्त विश्व को जय कर सकता है, अतः उसकी बात स्वीकार कर लो। अन्यथा उसका परिणाम होगा तुम्हारा, लक्ष्मण का व इस वानर सेना का जीवन नाश।'

यह सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। वे बोले, 'हे अधम दूत, अब भी क्या रावण अपनी और अन्य की शक्ति का परिमाप नहीं कर सका? उसका समस्त परिवार या तो मारा गया है या बन्दी बना लिया गया है। स्त्रियाँ ही अवशेष हैं। फिर भी वह अपने मुख से अपनी बड़ाई करता है। यह इसकी कैसी धृष्टता है? वृक्ष की समस्त शाखा-प्रशाखाओं के कट जाने पर स्कन्ध रूप वृक्ष जिस प्रकार खड़ा रहता है उसी प्रकार रावण भी परिवार रूपी शाखा-प्रशाखाओं से हीन होकर अकेला रह गया है।'

इसके प्रत्युत्तरमें सामन्त कुछ कहने ही जा रहा था कि वानर वीरोंने धक्का देकर उसे वहाँ से निकाल दिया। सामन्त ने राम लक्ष्मण ने जो कुछ कहा था वह जाकर रावण से निवेदन कर दिया। यह सुनकर रावण मन्त्रियों से बोला, 'अब क्या करना उचित है।'

मन्त्रियों ने पूर्व के अनुसार ही परामर्श दिया—'अब सीता को लौटा देना ही उचित है। राम के प्रतिकूल जाकर जो परिणाम हुआ वह तो आपने देख ही लिया अब उनके अनुकूल जाकर उसका परिणाम भी देख लीजिए। व्यतिरेक प्रतिकूल और अन्वय अनुकूल द्वारा ही समस्त कार्यों की परीक्षा होती है। इसलिए हे राजन्, आप केवल व्यतिरेक के पीछे ही क्यों पड़े रहते हैं? अभी भी आपके अनेक बन्धु बांधव पुत्र बचे हुए हैं अतः सीता राम को लौटाकर उनकी रक्षा करें और उनके साथ राज्य सम्पदा भोग करें।'

सीता को लौटाने के परामर्श पर रावण मर्माहत हो गया। वह बहुत देर तक बैठा विचार करता रहा। बाद में बहुरूपिणी विद्या की साधना को निश्चय कर मंत्रियों को विदा दी। रावण वहाँ से उठकर शान्तिनाथ भगवान के चैत्य में गया। भक्ति भाव से रावण का मुख प्रफुल्ल हो उठा। उसने इन्द्र की तरह जल कलश से शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति को स्नान करवाया, गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया और दिव्य पुष्पों से उनकी पूजा कर शान्तिनाथ प्रभु की स्तुति करने लगा—

'जगत के त्राता देवादिदेव परमात्मा स्वरूप षोडश तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।

'संसार सागर के त्राणकर्त्ता हे शान्तिनाथ, सर्वार्थसिद्धि के लिए मन्त्र रूप आप के नाम को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

'हे प्रभो, जो आपकी अष्ट प्रकारी पूजा करते हैं वे अणिमादि अष्टसिद्धियों को प्राप्त करते हैं।

'वे ही नेत्र धन्य हैं जो प्रतिदिन आपका दर्शन करते हैं। नेत्र से भी वे हृदय धन्य हैं जो हृदय में आपको धारण किए रहते हैं।

'हे देव, आप के चरण स्पर्श मात्र से प्राणी निर्मल हो जाते हैं। स्पर्शबोधि रस के स्पर्श से क्या लौह स्वर्ण नहीं हो जाता ?

'हे प्रभो, आपके चरण-कमलों में नमस्कार करने से और आपके समक्ष नित्य भूलुण्ठित होने से मेरे ललाट में आपके चरण-नखों की किरण पंक्ति शृंगार तिलक रूप हो।

'हे प्रभो, आपको निवेदित पुष्प गंधादि पदार्थ मेरे राज्य सम्पत्ति रूप लता के फल को मानो प्राप्त हो गए।

'हे जगत्पति, आप से मेरी बारम्बार यही प्रार्थना है भव-भव में मैं आपकी अत्यन्त भक्ति—पराभक्ति को प्राप्त करूँ।

भगवान की इस प्रकार स्तुति कर हाथ में अक्षमाला लिए रत्नशिला पर बैठकर रावण ने विद्या साधना प्रारम्भ कर दी। मन्दोदरी ने यमदण्ड नामक द्वारपाल को बुलाकर कहा, 'लंकापुरी में घोषणा कर दो कि लंकापुरी में आठ दिनों तक सब जैन धर्म का पालन करें, जो नहीं करेगा उसे प्राण दण्ड दिया जाएगा।'

आदेशानुसार द्वारपाल ने यही घोषणा करवा दी। गुप्तचरों ने जाकर यही सूचना सुग्रीव को दी। सुग्रीव ने जाकर राम से निवेदन किया, 'हे प्रभु, रावण के बहुरूपिनी विद्याके सिद्ध करने के पूर्व ही उसे पराजित कर देना उचित है। विद्या के सिद्ध हो जाने पर उसे पराजित करना असाध्य हो जाएगा।'

राम हँसकर बोले, 'शान्त होकर ध्यान करते हुए रावण पर मैं अस्त्राघात कैसे करूँ ? मैं उसके जैसा कपटी नहीं हूँ।'

राम की बात सुनकर अंगदादि वीर लंकापति रावण की साधना नष्ट करने के लिए शान्तिनाथ जिनालय में गए। वे उद्धतापूर्वक रावण को नानाविध कष्ट देने लगे किन्तु रावण जरा भी विचलित नहीं हुआ। अंगद ने

मन्दोदरी के केश पकड़कर रावण से कहा, 'रावण, शरण हीन और भयभीत होकर तुम यह कैसा नाटक कर रहे हो? तुमने हमारे प्रभु की अनुपस्थिति में सती सीता का हरण कर लिया था किन्तु हम तुम्हारे सामने तुम्हारी पत्नी का हरण कर लिए जा रहे हैं। फिर भी रावण कुछ नहीं बोला। तब अंगद क्रोध से प्रज्वलित होकर मन्दोदरी को खींचकर ले जाने लगा। वह अनाथा मन्दोदरी कुरटी पक्षी की तरह तब करुण क्रन्दन करने लगी। तब भी ध्यान-स्थित रावण ध्यान से विचलित नहीं हुआ।

उसी समय आकाश-मंडल को प्रकाशित करती हुई बहुरूपिणी विद्या प्रकट हुई। बोली, 'रावण, तुमने मुझे सिद्ध कर लिया है। बोलो, मैं तुम्हारा क्या काम कर सकती हूँ? मैं समस्त संसार को तुम्हारे वश में कर सकती हूँ, राम और लक्ष्मण हैं ही क्या?'

रावण बोला, 'हे विद्या, सचमुच तुम्हारे लिए सब कुछ साध्य है। किन्तु इस समय मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। अभी तुम जाओ। जब तुम्हें बुलाऊँ तब आना।' रावण का यह कथन सुनकर विद्या अन्तर्धान हो गयी। समस्त वानर भी उड़कर अपने-अपने स्थान पर आ गए।

रावण ने मन्दोदरी की दुर्दशा की बात सुनी। वह क्रुद्ध होकर दन्तघर्षण करने लगा। तदुपरान्त स्नानाहार कर देवरमण उद्यान में सीता के पास गया और बोला, 'हे सुन्दरी, मैंने बहुत दिनों तक तुमसे अनुनय-विनय किया है किन्तु तुम उपेक्षा करती रही। किन्तु मैं अब नियम भंग के भय का भी परित्याग कर राम और लक्ष्मण को मारकर बलपूर्वक तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूँगा।'

रावण के विषमय वचनों को सुनकर रावण की आशा के साथ-साथ सीता मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कुछ क्षणों पश्चात् ही चेतना लौटने पर उसने नियम लिया—जिस समय राम और लक्ष्मण की मृत्यु का संवाद सुनूँगी उसी समय से अनशन ग्रहण कर लूँगी।

सीता की प्रतिज्ञा की बात सुनकर रावण चमक उठा। सोचने लगा—राम के साथ इसका प्रेम स्वाभाविक है अतः इससे अनुराग करने की इच्छा शुष्कभूम पर कमल विकसित करने जैसी व्यर्थ है। विभीषण के कथन की उपेक्षा कर मैंने ठीक नहीं किया। हाय! मैंने स्व-कुल को कलंकित किया है और न्याय सम्मत परामर्श देने वाले मन्त्रियों का भी अपमान किया है। किन्तु अब मैं क्या करूँ? अब यदि सीता को छोड़ देता हूँ तो अपयश होगा। लोग कहेंगे राम के भय से रावण ने सीता को छोड़ दिया, ठीक तो यही रहेगा राम

और लक्ष्मण को बन्दी बनाकर यहाँ ले आऊँ फिर उन्हें सीता देकर छोड़ दूँ। उससे संसार में मेरा यश होगा और मेरी गणना धर्मात्मा में होगी। ऐसा सोचते हुए रावण अपने प्रासाद में चला गया। विभिन्न प्रकार की चिन्ता में उसने वह रात्रि व्यतीत की।

भोर होते ही रावण ने युद्ध के लिए प्रयाण किया। जाने के समय अनेक अपशकुन हुए किन्तु उसने किसी की भी परवाह नहीं की। राम और रावण की सेना में पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। योद्धाओं की हुँकार व उनके ताल ठोकने की आवाज से दिग्गज भी काँप उठे।

जिस प्रकार रूई को हवा उड़ा देती है उसी प्रकार राक्षस वीरों को पथ से हटाकर लक्ष्मण रावण पर वाण-वर्षा करने लगे। लक्ष्मण का पराक्रम देखकर रावण को स्व-विजय लाभ की चिन्ता होने लगी। अतः उसने जीत के लिए भयंकर बहुरूपिणी विद्या को स्मरण किया। स्मरण मात्र से विद्या आकर उपस्थित हो गयी। उसके द्वारा रावण ने अत्यन्त भयंकर रूप धारण किया। लक्ष्मण धरती पर आकाश में दोनों पार्श्व में पीछे-सामने शस्त्र बरसाते हुए अनेक रावण को देखने लगे। लक्ष्मण तो मात्र एक ही थे। फिर भी गरूड़ पर बैठकर शीघ्रतापूर्वक वाण बरसाते हुए उन्हें देखकर भी लगने लगा जितने रावण हैं उतने ही लक्ष्मण हैं। वे अनेक रावण का संहार करने लगे। वासुदेव लक्ष्मण के वाणों से रावण व्याकुल हो उठा। उसने अर्द्धचक्री के चिह्न स्वरूप जाज्वल्यमान चक्र का स्मरण किया। चक्र प्रकट होते ही क्रोधारक्त नेत्रोंवाला रावण अपने चक्ररूपी अन्तिम अस्त्र को आकाश में घुमाकर लक्ष्मण पर निक्षेप किया। वह चक्र लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उदयगिरि शिखर पर जैसे सूर्य उठ आता है उसी प्रकार उनके दाहिने हाथ में आ गया।

यह देखकर रावण दुःखी मन से विचारने लगा—मुनि की बात सत्य हुई। विभीषण आदि का निर्णय भी ठीक था। रावण को दुःखी देखकर विभीषण बोला, 'हे अग्रज, यदि बचना चाहते हो तो अब भी सीता का परित्याग कर दो।' यह सुनकर क्रुद्ध हुए रावण ने प्रत्युत्तर दिया, 'मुझे उस चक्र की क्या आवश्यकता है? मैं तो एक मुष्ठि प्रहार से ही चक्र और शत्रुओं को चूर-चूर कर दूंगा।'

ऐसे गर्वित वचन बोलने वाले रावण पर लक्ष्मण ने चक्र प्रहार किया। चक्र ने कुष्माण्ड पिष्टक की तरह रावण के वक्ष को विदीर्ण कर डाला। उस दिन ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी थी। हृदय विदीर्ण होने पर मृत्यु को प्राप्त कर रावण चतुर्थ नरक में गया। देव जयध्वनि करते हुए लक्ष्मण पर पुष्प वृष्टि

करने लगे। वानर सेना हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगी। उनकी किलकारियों से पृथ्वी और आकाश भर उठा।

सप्तम सर्ग समाप्त

अष्टम सर्ग

रावण की मृत्यु हुयी। समस्त राक्षस व्याकुल होकर सोचने लगे अब भागकर कहाँ जाएँ? विभीषण स्नेहवश स्व-जाति भ्राताओं के निकट गए और उनके भयभीत हृदयों को यह कहकर शान्त किया, 'हे राक्षस वीरों, ये राम और लक्ष्मण (पद्म और नारायण) अष्टम बलदेव और वासुदेव हैं। ये शरण में आये हुए के लिए शरण दाता भी हैं। अतः निःशंक होकर इनकी शरण ग्रहण करो।'

विभीषण के वचन सुनकर समस्त राक्षस वीर राम के शरण में आए। राम और लक्ष्मण ने उन्हें उदार आश्रय दिया। वीर पुरुष प्रजा पर समान दृष्टि रखते हैं। विभीषण को स्व अग्रज रावण की मृत्यु पर अत्यन्त शोक हुआ। 'हे भाई, हे अग्रज' कहते हुए वे करुण क्रन्दन करने लगे। अग्रज के वियोग दुःख से तो मृत्यु श्रेष्ठ है ऐसा सोचकर मरने की इच्छा से विभीषण कमर से कटार निकाल कर उदर विद्ध करने को उद्यत हो गए। राम उसी क्षण उनका हाथ पकड़ कर समझाने लगे, 'हे विभीषण, रणस्थल में वीरोचित वीरगति प्राप्त स्व अग्रज रावण के लिए व्यर्थ शोक मत करो। जिस वीर से युद्ध करने में देव भी शंका करते थे वही वीर आज वीरत्व दिखाकर अपनी कीर्ति को स्थापित कर वीर गति को प्राप्त हुआ है। ऐसे बन्धु के लिए शोक कैसा? अतः अब क्रन्दन बन्द करो और रावण का दाह संस्कार करो।

तदुपरान्त महात्मा राम ने बन्दी कुम्भकर्ण मेघवाहन आदि को मुक्त कर दिया।

कुम्भकर्ण विभीषण इन्द्रजित मेघवाहन मन्दोदरी आदि आत्मीय परिजनों ने रोते-रोते रावण के लिए गोशीर्ष चन्दन की चिता निर्मित की और कर्पूर अगरु मिश्रित प्रज्वलित अग्नि द्वारा रावण का अग्नि-संस्कार किया।

राम एवं अन्य लोगों ने पद्म सरोवर पर जाकर स्नान किया और रावण को जलांजलि दी।

तब राम और लक्ष्मण ने ऐसे मधुर स्वर में मानो अमृत की वर्षा हो रही हो कुम्भकर्णादि वीरों से बोले, 'हे वीरगण, पूर्व की भाँति ही आप लोग राज्य करें। आपकी सम्पत्ति का हमें कोई लोभ नहीं है। हम तो आपका कल्याण चाहते हैं।'

[क्रमशः

संकलन

॥ विकथा से धर्म कथा की ओर ॥

स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा और राजकथा को विकथा कहा गया है क्योंकि ये चारों प्रकार की कथाएँ साधक का अहित करती हैं, साधना में बाधा उत्पन्न करती हैं। संसार से विरक्त होकर संयम साधना में लगे साधक को इन विकथाओं के कारण सार्थक चिन्तन नहीं हो पाता। इन चारों प्रकार की कथाओं की चर्चा व्यर्थ चर्चा है, इनका चिन्तन व्यर्थ चिन्तन है, यही नहीं इनकी चर्चा एवं चिन्तन रत्नत्रय की आराधना में विघ्न स्वरूप है।···

विकथा के अनेक प्रकार हो सकते है। अर्थ कथा, चोर कथा, वैर कथा, पर पाखण्ड कथा, पर परिवाद कथा, आत्म प्रशंसा कथा आदि पच्चीस विकथाओं का उल्लेख गोम्मट सार जीव काण्ड में मिलता है। संक्षेप में कहें तो वे कथाएँ, वे वार्त्ताएँ जो चित्त में विकार पैदा करती हैं, सन्मार्ग से उन्मार्ग की ओर ले जाती हैं वे सब विकथाएँ हैं। एक स्वाध्यायी को विकथा से दूर रहना चाहिए।···

विकथा के विपरीत धर्मकथा होती है। धर्मकथा को स्वाध्याय का एक भेद माना गया है। चार प्रकार की कथा करना शास्त्र सम्मत है—आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी। आक्षेपणी कथा सम्यग्ज्ञान और चारित्र के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती है। विक्षेपणी कथा में अन्य (मिथ्या) मत का निरसन कर स्वमत (सम्यक् मत का) स्थापन किया जाता है। संवेदनी कथा में इहलोक तथा परलोक से वैराग्य तथा अपने एवं दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन होता है। निर्वेदनी कथा कृत कर्मों के शुभाशुभ फल दिखाकर संसार के प्रति उदासीन बनाती है। ये चारों प्रकार की कथाएँ स्वाध्यायियों के लिए उपादेय हैं।

स्वाध्यायी को किस प्रकार का साहित्य पढ़ना चाहिए। इस जिज्ञासा का समाधान कथा एवं विकथा के विवेचन से हो जाता है।

—डॉ. धर्मचन्द जैन

स्वाध्याय शिक्षा, अक्टूबर १६६२

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

तित्थयर

वर्ष १६

मई १९९२ से अप्रैल १९९३

कथानक

हेमचन्द्राचार्य	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२५, ४४, ७६, १११, १५१, १७३, २०८, २४५, २७२, ३०१, ३३७, ३६८

कविता

नागार्जुन	चन्दना	६६
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ	
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	३१, ६३, ६५, १५६, १८६, २५५, २८६, ३१६, ३५१

निबन्ध

अमर मुनि, उपाध्याय	अन्तर्यात्रा का प्रस्थान बिन्दु	१३१

ऋषभचंद फौजदार	'चावि या भावि' ?	७५
कुन्दनलाल जैन	अंतरीक्ष पार्श्व स्तुति—एक भौगोलिक खोज	३
—	जैन बिब्लिओग्राफी	२६१
के. आर. चन्द्र	मूल अर्धमागधी स्वरूप की पुनः रचना : एक प्रयत्न	३५५
गीता जैन	क्षमापना पत्र या वैभव का दिखावा	१२४
चन्द्रप्रभसागर, म.	अन्तर्निरीक्षण : प्रकृति और पद्धति	२६८
—	ध्यान : चित्त की एकाग्रता की कसौटी के लिए	१६७
छोटेलाल जैन	बंगाल का गुप्तकालीन जैन ताम्र शासन	१४०
दलसुख मालवणिया, पं.	जैन दार्शनिक साहित्य के विकास की रूपरेखा	२२७
प्रताप कुमार टोलिया	रहस्यवादिनी आत्मज्ञा जगत्माता धनदेवीजी	६७
बेनी प्रसाद	विश्व समस्या और व्रत विचार	१६५
भँवरलाल नाहटा	जैनधर्म और दीपावली	२३७
मदनकुमार मेहता	वीरचन्द राघवजी गाँधी	१६३
महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'	पाहुड सुत्तों की दशाधिक टीकाएँ	२५६
महेन्द्रकुमार 'प्रथम' मुनि	जैन धर्म की प्राचीनता	३२३
श्री प्रकाश पाण्डेय	समयसार के अनुसार आत्मा का कर्तृत्व-अकर्तृत्व एवं भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व	१२
श्री रंजन सूरिदेव	प्राकृत और संस्कृत : समानान्तर भाषाएँ	२६४
सुभाष कोठारी	जैन श्रमण साधना : एक परिचय	३५, ७०
सुरेश सिसोदिया	चन्द्रकवेध्यक (प्रकीर्णक)	३६०

पुस्तक समीक्षा

राजकुमारी बेगानी	जैन निर्देशिका	६३

संकलन

	अछूते सन्दर्भ	२८५
	राजगृह का गौरव शिखर—वैभारगिरि	१५८
अमरमुनि, उपाध्याय	विद्युत् जैन आगमों की नजर में	६२
चन्दनमल 'चाँद'	क्या अनेकान्त दृष्टि के आराधक कहलाने वाले जैन एकता का परिचय नहीं दे सकते ?	३१८
—	महावीर जयन्ती के दिन महावीर बनने का संकल्प करें	३०
—	मैत्री का मंगल सूर्योदय	१८८
धर्मचन्द जैन	विकथा से धर्म कथा की ओर	३७६
नरेन्द्र भानावत	धर्म व्यापार नहीं, आचार बने	३५०
—	शक्ति का प्रवाह मोड़ें	२५४
सुषमा जैन	संस्कार-निर्माण में नारी की भूमिका	६४

चित्र

अम्बिका, एलोरा	११०
ऋषभनाथ, त्रिपुरी, मध्यप्रदेश	२६०
चौमुख, मिदनापुर	३५४
जैन देवी, देवगढ़	२२६
जैन मन्दिर, छड़रा	६६
तीर्थंकर, एलोरा	२
भग्न जैन मन्दिर, पूँचड़ा	३४
रानी गुम्फा, खण्डगिरि, उड़ीसा	६५
शिकागो विश्व धर्म महासम्मेलन में	
वीरचन्द राघवजी गाँधी	१६२
शीतलनाथ मन्दिर, कलकत्ता	१६४
सहस्रफणा पार्श्वनाथ, राणकपुर	२५८

WB/NC-330

Vol. XVI No. 12 **TITTHAYARA** **April 1993**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

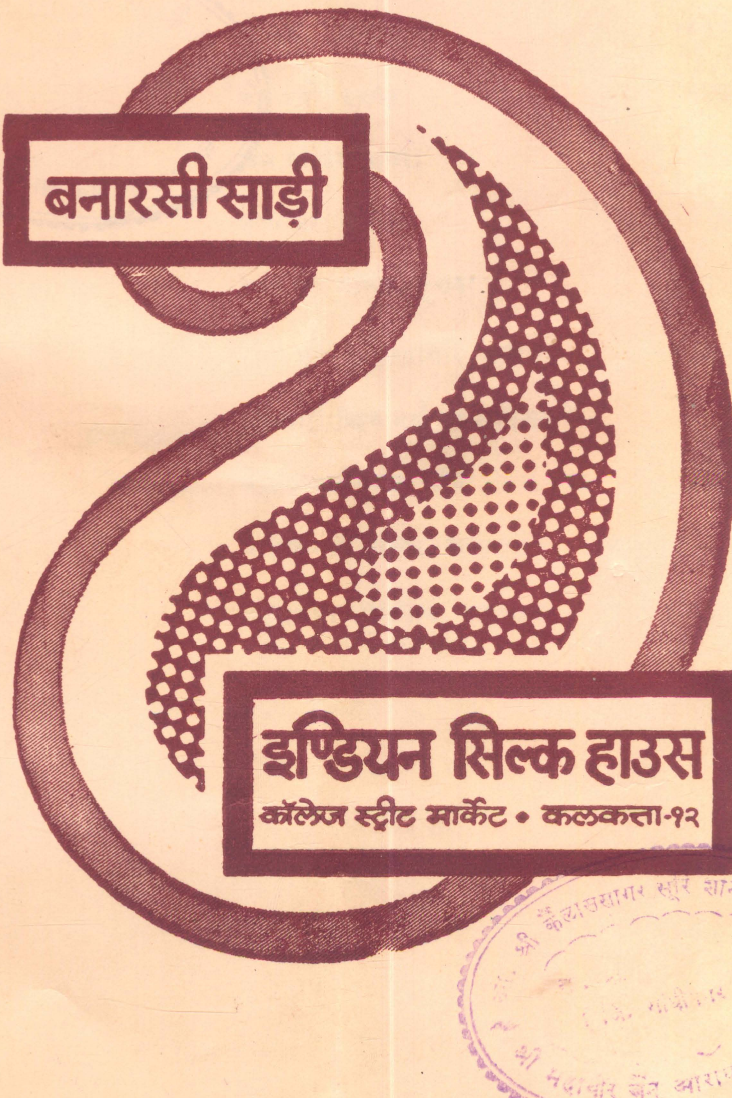

श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा